ॐ

नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

अथ

त्रिकुटी-विलास

जिसमें

प्राणायाम-विधि

सर्वसाधारण मोक्षाभिलाषियोंके कल्याण-
निमित्त

श्री १०८ स्वामी हंसस्वरूपजी

की

शिक्षानुसार कथन कियागया।

VOL. II — भाग २

Chapter I — अध्याय १

ॐ पूर्णपरब्रह्मणे नमः।

ॐ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु
सहवीर्य्यं करवावहै तेजस्विनावधीत-
मस्तु माविद्विषावहै ।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

सर्व साधारण मोक्षाभिलाषियोंपर विदितहो कि इस पुस्तकके प्रथमभागमें सन्ध्याविधि और प्राणायामके भेद कथन होचुके हैं। अब इस अध्यायमें निम्न-लिखित बातें, जो प्राणायामके शीघ्र सिद्ध होजानेकेलिये अति आवश्यक हैं, पूर्ण प्रकार वर्णन कीजाती हैं।

१—प्राणायामसे लाभ।
२—प्राणायामके अधिकारी।
३—प्राणायाम करनेका ठीक समय।
४—प्राणायाम करनेवालोंकेलिये पथ्य और अपथ्य।
५—प्राणायामकेलिये स्थान।
६—प्राणायामकी सहायता करनेवाली क्रियायें।
७—आठों प्रकारके प्राणायामका वर्णन।
८—प्राणायामके शीघ्र सिद्धहोनेकी ठीक ठीक और सुलभसे सुलभ रीति।

प्राणायामसे लाभ।

हे प्यारे भारतनिवासियो! "प्राणायाम" हँसी ठट्ठेकी बात नहीं है। लौंडोंका खिलौना नहीं है, कि सब के हाथोंमें पकड़ादिया जाये। गप्प और मसखरी नहीं

है, कि केवल बातोंहीसे प्रसन्न करदिया जावे, वह प्राणायाम वैदिक क्रियाओंमें एक मुख्यक्रिया है (अर्थात् क्लेश उठाकर करनेका कर्म है), जिससे वे बातें लाभ होती हैं, जो करोडों द्रव्य और राज्यकाराज्य देदेनेसे भी लाभ नहींहोतीं। अर्थात् इस क्रियासे लौकिक पारलौकिक दोनों प्रकारके आनन्द लाभहोते हैं। लोकमें तो सबसे पहिले आयुर्बलकी वृद्धि होती है। सर्वप्रकारके रोग नाश होजाते हैं। शरीर पुष्ट और आरोग्य रहता है। बुद्धि तीक्ष्ण होजाती है। कांति शोभायमान होती है। वृद्धता शीघ्र नहीं आनेपाती। अर्थात् ६० वा ७० वर्षसे पूर्व केश श्वेत नहीं होते। दृष्टि कम नहीं होती। शरीरका चमड़ा नहीं सिकुड़ता। परलोकके लिये चित्त ऐसा एकाग्र होजाता है, कि अपनेको आप पहचानने लगता है। सर्वत्र आत्मा-ही-आत्मा दीखनेलगता है। सब पदार्थों में ब्रह्मका चमत्कार भासनेलगता है। तीनों कालोंका ज्ञाता होजाता है। परमात्मस्वरूपमें समाधि होती है। अर्थात् अपने प्रियसे मिलनेका आनन्द लाभहोता है, जिस आनन्दमें आजतक ब्रह्मादि देवताभी मग्नहो समाधिस्थ होरहे हैं। सबसे उत्तम गुण तो इस क्रियाका यह है, कि कैसाही घोरपापी हो इस क्रियाद्वारा शीघ्र शुद्ध होजाता है।

प्रमाण "यमः" ।

दशप्रणवसंयुक्तैः प्राणायामैश्चतुः शतैः ।
मुच्यते ब्रह्महत्यायाः किंपुनः शेषपातकैः ॥

प्रमाण "मनुः" ।

व्याहृतिप्रणवैर्युक्ताः प्राणायामास्तु षोडश। अपि भ्रूणहणं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥

अर्थात् दश प्रणवके सहित प्राणायाम मन्त्र * के साथ चारसौ प्राणायाम करनेसे ब्रह्महत्यासे छूटजाताहै तो और पापोंकी तो गिनतीही क्या है? यह यमका वचन है। फिर मनु भी कहते हैं, कि व्याहृति और प्रणवोंके साथ सोलह प्राणायाम प्रतिदिन करनेसे मासभरमें भ्रूणहत्या अर्थात् गर्भके बच्चे मारनेके पातकसे छुड़ादेते हैं। मासभरमें १६ प्राणायामके हिसाबसे ४८० प्राणायाम मनुके वचनसेभी हुए।

परंतु हा शोक! इन दिनों प्राणायाम क्रियाकी कैसी दुर्दशा होरही है, सबोंपर प्रगट है। कोई तो कहता है, कि

* देखो भाग १ बृहत्सन्ध्याविधि पृष्ट ८४ प्राणायाममंत्र।

किसी क्रियाकी क्या आवश्यकता है? मैं स्वयं सिद्ध हूँ, बिना कुछ किये ब्रह्मको जानता हूँ। कोई प्राणायामका नाम सुनतेही कैसे चौंकउठता है, जैसे गोदका बच्चा घोघड़ वा हउआसे। कोई कहता है, कि इसके करने वालेकी जान निकलजाती है, आंखें फूटजाती हैं, कानके परदे फटजाते हैं, और रोगोंकी उत्पत्ति होती है। ऐसे ऐसे अनेक उलटे पुलटे फल ऐसी उत्तम क्रियाके बताते हैं। फिर कोईकहताहै, कि गृहस्थाश्रमीको तो करनाहीनहीं चाहिये। ऐसे पुरुषोंकी वार्तोंपर हँसी आती है, और शोकभी होता है। क्योंकि वे नहीं जानते हैं, कि वेदने छोटे छोटे बच्चोंको इस क्रियाके आरम्भ करनेकी आज्ञा दी है। देखिये जिस समय उनके गलेमें यज्ञोपवीत लटकायागया, प्राणायाम के सहित सन्ध्या गायत्रीके अधिकारी हुए। तात्पर्य यह है, कि बचपनहीसे थोड़ा थोड़ाभी प्राणायाम का अभ्यास करतेचलेंगे वो चतुर्थ अवस्थातक समाधि लाभहोगी। जैसे पूर्वके राजा महाराजा चतुर्थ अवस्थामें सन्यास स्वीकारकर वनमें जा समाधिस्थहो मुक्ति-लाभ करते थे। पर अब इसकी हानिसे चतुर्थ अवस्था आतेही कलेजेमें खांसी, गलेमें कफ, और हाथमें लाठीलाभ होती है। कारण इसका कुछ नहीं, केवल विद्या और सद्गुणोंका अभाव। इसमें

सन्देह नहीं, कि पहलेपहल यह क्रिया आरम्भकरनेवालों को अत्यन्त कठोर जानपड़ती है, और करनेकी रुचि नहीं होती। जैसे विद्यार्थियोंको पहले (अ, आ, क, ख,) वर्ण-माला अत्यन्त कठिन जानपड़ती है, और पढ़नेमें जी नहीं लगता, परन्तु जबपढ़लिखकर पण्डित होजाते हैं, पूजनीय होजाते हैं, अथवा वैरिस्टरी पासकर कचहरियोंमें द्रव्य लाभकरते हैं, तब फल समझमें आता है। इसी प्रकार प्राणायाम सिद्ध होजानेसेभी जब ब्रह्मका साक्षात्कार होनेलगजाता है, तब परिश्रमका फल जानपड़ता है।

प्राणायामके अधिकारी।

जो पुरुष निम्न-लिखित यम और नियमके दश दश अर्थात् वीसों अङ्गोंसे सम्पन्न हैं, वा इनकी प्राप्तिका यत्न कर रहे हैं, वे वृद्ध हों वा अतिवृद्ध हों, बालक हों वा युवा हों, रोगी हों वा दुर्बल हों, कैसेही क्यों न हों, आलस्य रहित होकर अभ्यास करनेसे अधिकारी होसकते हैं। और यदि करें तो सिद्ध होसकते हैं; क्योंकि यह क्रिया करनेहीसे सिद्धहोती है; केवल योग-शास्त्र पढ़नेहीमात्र से सिद्ध नहीं होती।

प्रमाण ।

युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधितो दुर्बलोऽपि वा । अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति सर्वयोगेष्वतन्द्रितः ॥ क्रियायुक्तस्य सिद्धिःस्यादक्रियस्य कथं भवेत् । नशास्त्रपाठमात्रेण योगसिद्धिः प्रजायते ॥

अब प्रथम यमके अंग कथन कियेजाते हैं—

१ यम ।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यं क्षमा-धृतिः । दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दशः ॥ अर्थात् अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य्य ४, क्षमा ५, धृति ६, दया ७, आर्जव ८, मिताहार ९, और शौच १०, ये दश अङ्ग यमके हैं ।

१. अहिंसा—ब्रह्मलोकसे पातालतकके निरपराधी और असमर्थ जीवोंको, अपनी आत्माके समान जान, अपने सुख वा जिह्वा-स्वाद-निमित्त हनन न करना वा किसी और प्रकारका शारीरिक वा मानसिक-दुःख न देना ।

प्रमाण "मनुः" अध्याय ५।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया। सजीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते ॥ ४५ ॥ योबन्धनवधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति। स सर्वस्यहिते प्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥ नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्। नच प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ ४८ ॥ अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी। संस्कर्ताचोपहर्ताच खादकश्चेतिघातकाः ॥ ५१ ॥

अर्थात्–जो अपने सुख और स्वादकेलिये निरपराधी जीवोंको हननकरता है, वह न जीवतेही इस लोकमें कुछ सुखपाता है, और न मरनेपर परलोकमें किसी आनन्दको लाभकरता है। अर्थात् दोनों लोकों को जानबूझकर आपसे आप नष्ट करदेता है ॥ ४५ ॥ जो प्राणी किसी जीवको बांधता मारता नहीं, वह सबका हितकारी और प्यारा होनेके कारण अत्यन्त सुखको प्राप्तहोता है ॥ ४६ ॥

।फिर किसी जीवकी जानमारे बिना मांस नहीं मिल सकता, और जीवका वधकरना स्वर्गका कारण नहीं, वरु नरकका मूल है, इसलिये मांस खानाही नहीं चाहिये ॥ ४८ ॥ क्योंकि मारनेकी आज्ञा देनेवाला, कुटिया अर्थात् मांसका टुकड़ा बनानेवाला, मारनेवाला, मोललेनेवाला, वेचनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला अर्थात् खानेकेलिये आगे लाकर रखनेवाला, और खानेवाला, ये आठों हिंसाके अपराधी, अर्थात् घातक, हैं। ५१।

अब मनुकी इस आज्ञासे सिद्धहोता है, कि किसी जीव के वधमें थोड़ीभी सहायता करनेसे वा साझी (शरीक) होनेसे हिंसाका अपराधी होनापड़ता है। जैसे साहिव जज वहादुर के इजलासमें किसी खूनके मुक़दमेमें जितने सहायक और साझी होते हैं, सब दंडपाते हैं। इसीप्रकार न्याय-कर्त्ता परमात्माभी इन आठोंको अवश्यही दण्डदेवेगा।

अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा परमस्तपः।
अहिंसा परमो लाभः, हिंसायां परमो ह्यघः॥

अर्थ– " अहिंसा " परमधर्म है, परमतप है, परमलाभ है, और " हिंसा " परमअघ (पाप) का मूल है।

२. सत्य— जोकुछ अपनी आंखोंसे और कानोंसे देखासुनाहो, गुरु और शास्त्रद्वारा जानाहो, और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे बोधहुआहो, उसे ठीक–ठीक दूसरे के सामने समयानुकूल पूछेजानेपर कहदेना। किन्तु यह ध्यान रखना, कि वार्ता तो सत्यहो, पर कठोर अर्थात् किसीके अन्तःकरणको दुखानेवाली नहो, वरु प्रियहो।

प्रमाण "मनुः" अध्याय ४ श्लोक १३८, १३९।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यम-प्रियम्। प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्म्मः सनातनः ॥ १३८ ॥

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्। शुष्कवैरं विवादंच न कुर्य्यात्के-नचित्सह ॥ १३९ ॥

अर्थात् सच बोलो, पर उसे प्रियकरके बोलो! अप्रिय अर्थात् कठोर न बोलो! जैसे किसी अधिक भो-जन करनेवाले पुरुषको जब समझानाहो तो ऐसे कहना चाहिये कि " भाई आपकी जठराग्नि ऐसी प्रबल है, कि आप और लोगोंसे कुछ अधिक अन्न पचासकते हैं; पर भाई! अधिक भोजन करनेसे अजीर्ण इत्यादि नाना

प्रकारके रोग उत्पन्नहोते हैं, इसलिये जहांतक होसके कम भोजन करना चाहिये "। फिर इसी वचनको यदि ऐसे कहैं, कि " तूतो बड़ा पेटू है, डेढ़सेर ठूंसलियाकरता है, अच्छा बच्चा खूब ठूँसो! मरोगे " तो बात वही हुई, पर कठोर हुई। फिर यहभी ध्यान रखनाचाहिये, कि प्रिय वचन हो, पर झूँठ न हो; जैसे कोई पुरुष किसी से कुछ लेनेके लोभसे ऐसा कहे, कि आपतो ईश्वर हैं ॥ १३८ ॥

फिर जब बोले तब भद्र अर्थात् कल्याणमय वचन बोले; यदि कोई अमंगल भीहो, तो ऐसी चेष्टा करे, कि उसे मंगल करके बोले। जैसे कोई पुरुष मरगयाहो, तो ऐसे कहना, कि अमुक प्राणीका स्वर्ग-वास होगयाहै। इसीप्रकार जब बोले तो सर्व मंगलही बोले।

निष्प्रयोजन किसीकेसाथ वैर-विरोध बढ़ानेवाला विवाद नकरे, और सूखा तथा कठोर न बोले।

फिर पातञ्जलि अ॰ २ सूत्र ३६ में लिखा है कि

"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्"।

अर्थात् जो पुरुष सदा सत्य बोलनेकी चेष्टा करता है, उसीको उसकी सब क्रियाओंका फल मिलता है, और झूँठे पुरुषकी कोईभी क्रिया सिद्ध नहीं होती।

३. **अस्तेय**— जो वस्तु अपनी नहीं है उसे कभी नहीं लेना, चोरी न करना, अथवा और किसीप्रकार धोखा वा छलसे दूसरेकी वस्तुको ग्रहण न करना।

मनुः। येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः॥

अर्थात् जिस जिस अङ्गसे जिस जिस युक्तिसे चोर चोरीकरे, राजाको उचित है, कि उसके उन अङ्गोंको उसी प्रकार कटवादेवे। फिर यह अस्तेय वह उत्तमसाधन है, कि जिसकिसीमें यह क्रिया पूरीहोगई उसके समीप सब रत्न, हीरे, लाल, विना इच्छाकियेही आपसेआप चलेआते हैं।

प्रमाण।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

पात० अ० २ सू० ३७

४. **ब्रह्मचर्य्य**—किसी स्त्रीकी ओर काम-दृष्टि न करना। यदि गृहस्थाश्रममें हो, तो अपनी धर्म-पत्नीको छोड़ और किसी पर स्त्रीके संग काम-चेष्टा नहीं करे, वरु अपनी स्त्रीके संगभी विना पुत्रादि प्रयोजन के काम-क्रीड़ा न करे, ऐसा गृहस्थभी सदा ब्रह्मचारीही है। इस क्रियासे वीर्य्य पुष्ट होता है। शरीर बलवान होजाता है। बुद्धि तीक्ष्ण होजाती है। लक्ष्मीकी वृद्धि होती है। संस्कार और

तेजभी दिनदिन अधिक होतेजाते हैं, जैसा पतञ्जलीने कहा है, कि—

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः ।

पात० अ० २ सू० ३८ ।

फिर मनुका भी वचन है—

मनु० अ० ९ श्लोक ४१ ।

तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ।
आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ॥

अर्थात् ज्ञान-विज्ञान-शास्त्र-संपन्न बुद्धिमान, यदि आयुर्बलकी वृद्धि और पुष्टि चाहता हो तो, परस्त्रीके गर्भमें अपना बीज कभी न बोवे ।

५. क्षमा—जो कोई अपने साथ कोई बुराई करे तो उसका बदला न लेना, वरु समयपर उसकी भलाई करदेना; अर्थात् समर्थ होनेपर भी असमर्थोंको अपराधका बदला न लेना, वरु उनके दोषोंको स्मरण करतेहुए भी उनकी रक्षा करनी ; जैसे जगदीश्वर जीवोंके पापोंको स्मरण रखतेहुये भी उनकी रक्षाकरता है, इसलिये क्षमासागर कहाजाता है ।

६. धृति—किसी आपत्तिमें चंचलहोकर अपनी

निष्ठा भ्रष्ट न करनी, और विश्वास न छोड़देना । चाहे कैसाही कठोर समय क्यों न आजावे, आंखमूंद दृढ़ताके साथ सहन करलेना ।

गोस्वा० तुलसीदासजी, चौपाई—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी ।
आपतकाल परखिये चारी ॥

७. **दया**— किसी प्राणीको दुखित देखकर उसके दुःख-निवारणार्थ क्लेशित होना; अर्थात् दुखी जीव जो अपनेसे निर्बल हो, अपने आधीन हो, अपनी शरणमें आया हो, वा किसी आपत्तिमें फँसा हो, यथाःशक्ति सहाय-ता करनी, और उसकी इच्छा पूर्ण करदेनी ।

८. आर्जव— अन्तःकरणका शुद्ध और निश्चल रखना । कपट, छल, और प्रपंचादिसे, कोसों दूर भागना । बुद्धिसे अपना समय व्यतीत करना । किसीको अपनेसे नीचा न जानना । स्वयं अपनी प्रशंसा न करनी ।

९. मिताहार— न इतना अधिक भोजन करना, जिससे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होजावें; और न इतना कम भोजन करना, जिससे शरीर निर्बल होजावे ।

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥
मनु० अ० २ श्लोक ५७ ।

अर्थात् अतिभोजन रोगोंका उत्पन्नकरनेवाला है, इसलिये मृत्युका कारण है । फिर अस्वर्ग्य है, अर्थात् अधिक भोजनसे स्वर्गप्राप्ति-निमित्त यात्रादि क्रियायेंभी नहीं होसकतीं । फिर अपुण्य है, अर्थात् अधिक भोजन से किसी प्रकारका पुण्यभी नहीं होता। फिर लोक-विद्विष्ट है, अर्थात् लोकमें भी निन्दा होती है, कि अमुक पुरुष बड़ा खानेवाला वा पेटू है। इसकारण बुद्धिमानको चाहिये, कि अधिक भोजन न करे ।

१०. शौच-यह दो प्रकारका है,शारीरिक और मानासिक।

१. शारीरिक शौच—मृत्तिका और जलसे शरीर और वस्त्रादि को शुद्धरखना । मल, मूत्र परित्यागके समय मल-स्थानमें पांच वार, और मूत्र-स्थानमें एक वार मृत्तिका लगाकर पश्चात् जलसे शुद्धकरना,तत्पश्चात् अच्छे प्रकार मुँह धोना। दंतधावन करना; अर्थात् कमसेकम एक घड़ीतक दांतोंको भलीभांति अच्छे मोटे दातवनसे,

जो कनिष्ठा अँगुलीके समान मोटा हो, शुद्धकर कमसे कम सातबार जिह्वाके मलको निकालना। ऐसा नहीं करनेसे दांत और जिह्वा शुद्ध नहीं होती। मुखसे एक प्रकार का दुर्गन्ध आता है। फिर केशोंको अच्छे प्रकार झाड़ना, कि जूयें (लीक) न फैलजावें, वा और किसी प्रकारसे घृणा न उत्पन्न हो। फिर स्नानके समय कटिसे जंघातक मृत्तिका लगा स्नान करना। स्त्री-प्रसंगके पश्चात् सर्वाङ्गमें मृत्तिका लगा स्नानकरना। और ध्यान रखना, कि जिस वस्त्र को पहिंनकर स्त्रीप्रसङ्ग किया हो, उसको पहनेहुये स्नान न करना, वरु उसको उतारकर दूसरे वस्त्रको धारणकर स्नान करना; क्योंकि मनुकी आज्ञा है, कि " अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति ", अर्थात् जलहीसे शारीरिक शुद्धि होती है।

२. मानसिकशौच—कपट, छल, प्रपञ्च, पाखण्डादि को परित्यागकर सबसे सच्चाहो रहना; और शुद्ध चित्तसे सबके सङ्ग मित्रतारखनी; और अपना कोई अर्थ अनुचित रीतिसे लाभ न करना।

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि सः शुचिर्न मृद्वारि-
शुचिःशुचिः॥ मनु० अ० ५ श्लोक १०६।

अर्थात् सब शौचोंमें "अर्थ-शौच" *, उत्तम है; क्योंकि जिसको अर्थशुचि प्राप्त है, वही शुद्ध है; नहीं तो, चाहे कितनाही मिट्टी और जलसे शरीर धोया करे, शुद्ध नहीं होसकता।

ये दशों अङ्ग "यम" के कथन होचुके; अब "नियम" के दशों अङ्ग वर्णन कियेजाते हैं।

नियम।

तपः संतोष आस्तिक्यं दानमीश्वर-पूजनम्। सिद्धान्त-वाक्य-श्रवणं ह्री सती च जपोहुतम्॥

अर्थात्—तप १, सन्तोष २, आस्तिक्य ३, दान ४, ईश्वरपूजन ५, सिद्धान्त-वाक्य-श्रवण ६, ह्री ७, सती ८, जप ९, हुत १०, ये नियम के दश अङ्ग हैं।

---

* अपने अर्थ-साधनके लिये दूसरे के साथ छल, कपटादि नहीं करना, और शुद्ध चित्तसे जहांतक अर्थ-लाभ हो उसीपर सन्तोष करना, अर्थशौच है।

१. तप–तपस्या, अर्थात् ईश्वरके प्रेममें तप्त होना। ईश्वरसे मिलनेके निमित्त नानाप्रकारके क्लेशोंको सहन करना। जिस आश्रम और वर्णमें हो, उसके नियमोंको विधिपूर्वक पालन करना *। शरीर और इन्द्रियों को बुरे कार्य्योंसे हटाकर भले कामोंमें लगाना, क्योंकि ऐसे तपसे सब पाप नाशहोकर शरीरके साथ इन्द्रियां निर्मल, शुद्ध, और सिद्ध, अर्थात् वशीभूत होजातीहैं।

प्रमाण।

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।

पात० अ० २ सू० ४३।

तपप्रशंसा।

" मनुः " अध्याय ११।

तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषिकं सुखम्।
तपो मध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः॥ २३४॥
ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ २३६॥

---

* मनुः अ० ११ श्लोक २३५।
ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं, तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।
वैश्यस्यतु तपो वार्ता, तपः शूद्रस्य सेवनम्॥ २३५॥

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ।
सर्वंतु तपसा साध्यम् तपोहि दुरतिक्रमम् ॥ २३८ ॥
महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्य्यकारिणः ।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्विषात्ततः ॥ २३९ ॥
कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च पयांसिच ।
स्थावराणिच भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात् ॥ २४० ॥
यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः ।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥ २४१ ॥

अर्थात् जितने भी सुख देवताओं वा मनुष्योंको प्राप्त हैं, सबका मूल तपस्याही है । ज्ञानियोंने मध्यमें उन सुखोंकी स्थितिभी तपहीसे कही है; और उत्तम वेदज्ञों ने इनका अन्ततक प्राप्तरहनाभी तपहीसे वर्णनकिया है ॥ २३४ ॥ फिर काया, मन, तथा वाणीके संयमकरनेवाले, तथा कंद, मूल, फल, और वायुके आधारपर रहनेवाले ऋषिलोग तीनों लोकोंके जड़ और चैतन्य के वृत्तान्तोंको तपहीके बलसे बैठेबैठे जानलेते हैं ॥२३७॥ फिर जो कुछ दुस्तर, अर्थात् ग्रहादिके विकारसे कठिन, दुख हैं; और जो कुछ दुराप, अर्थात् अत्यंत कठिनाईसे प्राप्त होने योग्य हैं, जैसे विश्वामित्रका क्षत्रीसे ब्राह्मण होना वा

और जो कुछ दुर्गम हैं, जैसे मेरु आदि पर्वतोंपर चढ़ना; और जो कुछ दुष्कर हैं, जैसे मणि, स्वर्ण, गोदानादि करना; वह सब केवल तपस्याहीसे साध्य होजाते हैं, क्योंकि तपस्या अतिउग्र बल है ॥२३९॥ फिर महा-पातक अर्थात् ब्रह्महत्यादि पाप, और भी अनेक दुष्कर्म तपस्याहीसे नाश होजाते हैं॥ २४० ॥ फिर कीट, सर्प, विच्छू, पशु, पक्षी, स्थावर, वृक्षादि, सब तपहीके बलसे स्वर्ग चलेजाते हैं; क्योंकि ये जीव, जिन पापोंसे ऐसी योनि पाते हैं, सब पापोंके उनको स्वाभाविक-तपस्यासे, अर्थात् शीत, और उष्णके सहनेसे, क्षीण होजानेके कारण, फिर अन्तमें सुखको प्राप्तहोते हैं॥ २४१ ॥

फिर जो जो पाप मन, वचन, और शरीरसे उत्पन्न होते हैं, वे सब तपहीसे नाश होजाते हैं, इसकारण यह तप परमधन है। इस धनका यत्न विधिपूर्वक करनाचाहिये ॥ २४२ ॥

फिर ऋग्वेदमें कहा है, कि इस त्रिलोकीकी रचनाभी ईश्वरके तपरूप बलहीसे होती है।

ऋतञ्च सत्यञ्चाभिद्धात्तपसोऽध्यजायत &c. &c.

ऋ० अ० ८ व० ४८ ।

२. सन्तोष—कर्मानुसार जोकुछ प्राप्ति हो जावे, उसे आनन्दपूर्वक स्वीकार करलेना; त्याग न करदेना । जो वस्तु प्राप्त न होवे, उसके लिये इच्छाभी न करनी । खोई वस्तुका शोक न करना; और ईश्वरको सब इच्छाओंका पूर्ण करनेवाला जानना ।

सन्तोषादनुत्तमस्सुखलाभः ।

अर्थात् सन्तोषसे ऐसा सुख लाभहोता है, कि जिससे बढ़कर उत्तम कोई दूसरा सुख नहीं ।

३. आस्तिक्य—सदा इस विश्वासको दृढ़ रखना, कि इस जगत्का कर्ता कोई पुरुष है, जिसे हम लोग सर्व-शक्तिमान-जगदीश्वर, मुसलमान खुदा, और अंग्रेज गौड (God) के नामसे पुकारते हैं । यद्यपि वह किसी इन्द्रियद्वारा देखा, सुना, वा जाना नहीं जाता, तथापि ऐसा न समझना, कि ईश्वर नहीं है, अर्थात् नास्तिक वा नेचरिया न बनजाना, फिर अपने मतके ग्रन्थोंमें, अर्थात् वेद, शास्त्र, पुराणादिमें, महापुरुषोंके वचनोंमें, और प्रयागादि तीर्थोंमें विश्वास रखना ।

४. दान—यथाशक्ति दुर्बलोंके उपकार-निमित्त अपने उपार्जन कियेहुये द्रव्यमेंसे कुछ देना; अर्थात् ऐसे स्थानमें द्रव्यको व्यय करना कि जिससे किसी प्रकार का लौकिक, वा पारलौकिक सुखका पराये निमित्त साधन हो। जैसे पाठशाला, गोशाला, धर्मशाला, वा चिकित्सा-लयके बननेमें, वा किसी निर्धनकी कन्याके विवाहमें, वा विधवा और उन बालकोंकी रक्षामें जिनके माता पिता न हों। यदि उक्त कार्य्योंमें व्यय करनेको सामर्थ्य न हो, तो भूखेको अन्न, प्यासेको पानी, और नंगेको वस्त्र, देना भी उत्तम दान † है।

५. ईश्वर पूजन—चलते, फिरते, हँसते, खेलते, उठते, बैठते, खाते, पीते, सोते, जागते, सदा ईश्वरको स्मरण रखना, और सब वस्तुओंमें उसीका तेज मानकर ईश्वरमय देखना, इसप्रकार ईश्वरमें चित्तलगाये रहनेसे समाधि सिद्ध होजाती है।

---

† जाने रहो, कि जो मूर्ख अपनी इन्द्रियोंके स्वादनिमित्त वेश्या और भडुओंमें तो लाखों व्यय करदेता है, परन्तु दान नहीं देता, तो किसी दिन उसका उतना धन अवश्य चोरों वा अग्निद्वारा नष्ट होजायगा। फिर उस समय पछताना पड़ेगा, कि इतना द्रव्य दान देदेते तो अच्छा था।

प्रमाण।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।

पात० अ० २ सू० ४५।

६. सिद्धान्त-वाक्य-श्रवण— जो जो बातें वेद, वेदान्त, श्रुति, स्मृति, और महापुरुषोंके अनुभवद्वारा सिद्ध कीहुई हैं, उनको ज्ञानियोंकी मण्डलीमें बैठ श्रवणकरना, क्योंकि विना सिद्धान्त-वाक्योंके श्रवणकिये शुभआचरण नहीं होसकते।

प्रमाण मनुः अ० २ श्लोक ८, ९।

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेतवै ॥ श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः। इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्यचानुत्तमं सुखम् ॥

अर्थात् सर्व शास्त्र और श्रुतिके प्रमाणोंको देखकर, और सर्व ज्ञान-विज्ञानके तत्वोंको भली भांति सुनकर विद्वानोंको अपने धर्ममें प्रवेशकरना उचित है। जो मनुष्य श्रुति और स्मृतिके अनुसार कर्मोंको करता है, वह इस लोक में यशपाता है, और परलोकमें उत्तम सुख लाभकरता है

७. ह्री— सलज्ज रहना । स्वार्थ-वश होकर लज्जा परित्याग न करदेनी । अपने कुल, वंश, जाति तथा घरकी जो मर्य्यादा हो, उसे उलंघन न करना ।

८. सती—संसारके विषय-सुखसे लेकर स्वर्गतकके सुखकी इच्छा न करके केवल ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, ऐसी बुद्धि रखेहुये सदाचारमें लगेरहना।

प्रमाण मनुः अध्याय ४ श्लोक १५६, १५७, १५८।

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः। आचाराद्धनमक्षय्यमाचारोहन्त्य-लक्षणम्॥ १५६॥ दुराचारोहिपुरुषो लोके भवति निन्दितः। दुःखभागीचसततं व्याधितोऽल्पायुरेवच ॥ १५७ ॥ सर्वलक्षण-हीनोपि यः सदाचारवान्नरः। श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतंवर्षाणिजीवति ॥ १५८॥

अर्थात् सदाचरणसे आयु, पुत्र, पौत्र, तथा अचल धनादि प्राप्त होते हैं, और देहका अरिष्ट नाशहोता है ॥ १५६ ॥

दुराचारी सदा लोकमें निन्दित, दुखी, रोगी, और थोड़ी आयुवाला होता है ॥ १५७ ॥ सर्वलक्षण-हीन मनुष्य भी यदि सदाचार करता है, और किसीका दोष प्रगट नहीं करता, तो वहभी सौ वर्ष जीता है ॥ १५८ ॥

६. जप—प्रणव, गायत्री आदि मन्त्रोंको, जो गुरुसे मिलेहों निरन्तर जपकरना, यह जप यज्ञ और सब प्रकारके यज्ञोंमें श्रेष्ठ है। यह तीन प्रकारका है, वाचिक, उपांशु, और मानसिक। (देखो त्रिकुटि-विलास भाग १ अध्याय २ पृष्ठ ६१)।

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः। उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रोमानसः स्मृतः॥ ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः। सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

मनु॰ अ॰ २ श्लो॰ ८५, ८६।

अर्थात् दर्श पौर्णमासादि जो विधि-यज्ञ हैं, उनसे दशगुनी वाचिक-जप, सौगुनी उपांशु-जप, और हजार गुनी मानसिक-जप, को विशेषता है ॥ ८५ ॥

होम, वैश्वदेव, श्राद्ध, और अतिथि भोजन ये चारों पाक यज्ञ और उक्त विधि यज्ञादि सब मिलकर जप यज्ञ के सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हैं॥ ८६॥

१०. **हुत**—अर्थात् होम करना, वेदों की आज्ञानुसार वैदिक मन्त्रोंसे हवनकी सामग्रियां, समिध आदिक एकत्र करके पौर्णमासादि समय २ पर हवन करना क्योंकि प्रगट है कि इन दिनों हवनादि यज्ञों के नहीं होनेसे प्रायः अनावृष्टि होजाती हैं जिससे अन्न उत्पन्न नहीं होता, प्रजा दुःखी रहती है ।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥

मनु० अ० ३ श्लोक ७६ ।

अर्थात् आहुति से रस आदित्य में जाता है, तिस आदित्य (सूर्य्य) से वर्षा फिर वर्षासे अन्न और अन्नसे प्रजाकी वृद्धि होती है, इस कारण ज्ञानियों विद्वानोंको समय २ पर हवन अवश्यही करना उचित है ।

फिर ईश्वरके प्रेम रूपी अग्निमें तन, मन, और धनको भस्म करना भी सच्चा होम है ।

अब हे प्यारे धर्मावलम्बियो! उक्त "यम" और "नियम" के जो दश दश अङ्ग कथन किये गये हैं उन वीसों अङ्गों का अभ्यास करने वाला प्राणायाम का सच्चा अधिकारी है ॥

प्राणायाम करनेका समय।

प्रातर्मध्यन्दिने सायमर्धरात्रे च कुम्भकान्।
शनैरशीतिपर्य्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥

हठ० २। ११।

अर्थात् अरुणोदयसे लेकर तीन घड़ी पर्य्यन्त जो प्रातःकालकी सन्ध्याका समय है और मध्यान्ह दिनके पांच विभाग करने से जो मध्य भाग होवे तिसमें फिर सूर्य्यास्तके एक मुहूर्त पहिलेसे लेकर तीन घड़ी पीछे तक जो सायं सन्ध्याका समय है, फिर अर्धरात्रि, इन चारों समय में अस्सी २ (८०) प्राणायाम करना उचित है यदि अर्धरात्रिको न होसके तो तीनही समय २४० प्राणायाम करे और यदि मध्यान्हमें भी असम्भव हो तो प्रातः और सायं दोही समय १६० ही प्राणायाम किया करे।

प्रथम साधन वालेसे अस्सी २ प्राणायाम एक समय होना असम्भव है तथापि उचित है कि तीन प्राणायामसे (जो सन्ध्यामें करते हैं) लेकर जहां तक अधिक होसके बढ़ानेका परिश्रम करें।

अब वह प्राणायाम कालके भेदसे तीन प्रकार का है, १ कनिष्ट २ मध्यम और ३ उत्तम ।

कनीयसि भवेत् स्वेदः कंपो भवति मध्यमे।
उत्तमे स्थानमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥

हठ० २ । १२

अर्थात् कनिष्ट प्राणायाममें पसीना * निकलता है, मध्यममें कंप होता है और उत्तममें प्राण ब्रह्मरंध्रको पहुंच जाता है।

कुछ कम ४२ विपल अर्थात् आधे मिनट तक कुम्भक रहे सो कनिष्ट प्राणायाम काल, और ८४ विपल के लग भग अर्थात् एक मिनट कुम्भक रहै सो मध्यम प्राणायाम काल और १२५ विपल अर्थात् डेढ़ मिनट कुम्भक रहे सो उत्तम प्राणायाम काल है, जब एवम् प्रकार उत्तम प्राणायाम काल लाभ होता है तब

---

* प्राणायाम के समय जो पसीना निकले उसे तेलके ऐसा शरीरमें मर्दन करनेसे शरीरमें दृढ़ता और लघुता अर्थात् फुरती होती है।

प्राण ब्रह्मरंध्रमें अर्थात् सहस्र दलकी कर्णिका में, जिसको भ्रमर गुफा भी कहते हैं और जहां साक्षात् हंस स्वरूप परम चैतन्य कला जगदीश्वर तत्व करोड़ों सूर्य्यकी ज्योतिसे भी अधिक प्रकाशित है जा पहुंचता है फिर एवम् प्रकार ब्रह्मरंध्रमें प्रवेश किया हुआ प्राण उस स्थानमें २५ पच्चीस पल तक अर्थात् १० मिनट तक स्थित रहे तो धारणा होती है और ६ छः घड़ी तक स्थित रहे तो ध्यान होता है और १२ दिन तक स्थित रहे तो समाधि होती है ।

इस रीतिसे जो साधक जितना अधिक गुरु कृपा से परिश्रम करसकेगा उतना शीघ्र समाधि लाभ कर सकता है, यदि यह शंका हो कि इसके मध्य ही में मृत्यु आजावे तो परिश्रम व्यर्थ हुआ तो उत्तर यह है कि एक तो इस क्रिया वालेकी शीघ्र मृत्यु होती ही नहीं जैसे २ क्रिया करता जाता है वैसे २ आयु बढ़ती जाती है दूसरे यदि ऐसीही आयुकी क्षीणता हो कि मृत्यु आही जावे और क्रिया पूरी न हो सके तो वह पुरुष नरकादिके दुखोंसे एक दम बच जावेगा और किसी नीच योनिमें कदापि नहीं जन्म लेगा किन्तु नाना प्रकारके सुखोंको भोगता हुआ फिर किसी

योगी, धर्मात्मा, धनवान, कुलीनके घरमें जन्मलेगा जहां फिर उसको अपनी क्रिया बढ़ानेका सावकाश मिलेगा, एवम् प्रकार अनेक जन्मोंके संस्कार एकत्र होनेसे कैवल्य परम पदको लाभ करेगा जैसा श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने गीतामें अर्जुनसे इसी विषय पर कहा है कि :—

प्राप्य पुण्य कृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः। शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥

अ० ६ श्लो० ४१

अर्थात् योग भ्रष्ट प्राणी अनेक लोकोंके सुखोंको भोगता हुवा फिर पवित्र धनवान कुलमें जन्म लेता है।

प्राणायाम करनेवालोंका पथ्यापथ्य।

अर्थात् प्राणायाम करने वालोंके लिये क्या पथ्य हैं और क्या अपथ्य हैं वर्णन किये जाते हैं:—

अपथ्य

पूर्वमें मिताहार यमका अङ्ग वर्णन हो चुका है सो साधक मिताहारी हो और नीचे लिखी हुई वस्तुओंको भूल कर भी भोजन न करे।

कट्वम्लतीक्ष्ण लवणोष्णहरीतशाक,
सौवीरतैलतिलसर्षपमद्यमत्स्यान् ।
आजादिमांसदधितक्रकुलत्थकोल,
पिण्याकहिंगुलशुनाद्यमपथ्यमाहुः ॥
ह० १ । ५६

अर्थात् कड़ुई, खट्टी, तीक्ष्ण, (लालमरिचादि) अत्यन्त नमक, अत्यन्तगर्म, (गुड़ादि) हरीतशाक, (पत्रशाक) कांजी, तैल, तिल, सरसों, मद्य (शराब) मछली, बकरी, शूकर, पक्षी आदिका मांस, दही, तक्र, कुलथी, बेरका फल, तिलपिण्डी, हींग, लहसुन, प्याज, गाजर, उड़द, ये सब वस्तु साधकोंके लिये अपथ्य हैं, । फिर

भोजनमहितं विद्यात्पुनरप्युष्णीकृतं रूक्षम् । अतिलवणमम्लयुक्तं कदशनशाकोत्कटं वर्ज्यम् ॥ वर्जयेद्दुर्जनप्रान्तं वह्निस्त्री पथिसेवनम् । प्रातःस्नानोपवासादिकायक्लेशविधिं तथा ॥

ह० १ । ६०, ६१

अर्थात् जो भोजन पहिले ठंडा होगया फिर उसे गर्म करके खाना हानि कारक है, और जो अन्न रूखा घृत रहित होवे और सड़कर खट्टा हो गया हो उसमें गंध आ गया हो और उत्कट हो तो कदापि भोजन नहीं करना फिर दुर्जनके साथ बैठना, आग तापना, स्त्री प्रसङ्ग करना, मार्ग चलना, प्रातःकाल जाड़ेके दिनोंमें ठंडे जलसे अर्थात् रातका रखा हुआ बासी जल अथवा कूपसे देरके निकाले हुये जलसे स्नान करना, उपवास करना अथवा और किसी प्रकारका मिथ्या क्लेश शरीरको देना, साधकोंको एक दम वर्जित हैं, परंच यदि गृहस्थ हो तो ऋतु-कालमें भार्य्या गमन और जो अत्यन्त शीत काल हो तो अग्नितापना और तीर्थादिमें थोड़ा थोड़ा मार्गचलना निषेध नहीं।

योगाभ्यासीको अभ्यास कालमें बहुत बोलना, बहुत चलना, बहुत सोना, बहुत जागना, बहुत भोजन करना अथवा किसी प्रकारका बहुत क्लेश उठाना नहीं चाहिये जब अभ्यास सिद्ध हो जावे तब चाहे करे।

अनेक शास्त्रोंका चिन्तन करना भी साधकोंके लिये निषेध है।

पथ्य ।

गोधूमशालियवषष्टिकशोभनान्नं,
क्षीराज्यखण्डनवनीतसितामधूनि ।
शुंठीपटोलकफलादिकपंचशाकं,
मुद्गादिदिव्यमुदकं च यतीन्द्रपथ्यम् ॥
पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातु प्रपोषणम् ।
मनोभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत् ॥
ह० १ । ६२, ६३

अर्थात् गेहूं, चावल शाठी, शमा, कँगनी, दूध, घृत शर्करा, माखन, मिश्री, शहत, शुंठी, परवर, पनस, (कटहल) जमीकन्द, सूरन, रतालू, चौलाई, मूंग, अरहर, निर्दोष फलादिक, और कूपकाजल साधकोंके लिये पथ्य है ॥ ६२॥ देहको पुष्टकरे ऐसा ओदनादि (भात) शर्करा सहित होय घृत, दूध गऊका, यदि गऊका नमिले तो भैंसका भी ग्राह्य है, धातुको पोषण करे ऐसाजो लड्डू, पूआ, पूरी, जलेबी, पेड़ा, जो मनको रुचिकरे, परन्च अपथ्य न हो, ऐसे पदार्थों को साधक भोजनकरे, केवल सत्तू वा चनाचाबकर रहजाना ऐसा भूलकर भी साधक कभी नकरे ॥ ६३ ॥

प्राणायामके लिये स्थान निर्णय ।

सुराज्ये धार्मिके देशे सुभिक्षे निरुपद्रवे ।
धनुःप्रमाणपर्य्यन्तं शिलाग्निजलवर्जिते ॥
एकान्ते मठिकामध्ये स्थातव्यं हठयोगिना।
अल्पद्वारमरंध्रगर्तविवरं नात्युच्चनीचायतं,
सम्यग्गोमयसांद्रलिप्तममलं निःशेषजन्तू-
ज्झितम् । वाह्ये मण्डपवेदिकूपरुचिरं प्राकार
संवेष्टितं, प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं
सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः ॥

हठ० १ । १२, १३

अर्थात् जिस राज्यमें रहे वह ऐसा होना चाहिये कि जहां किसी प्रकारका क्लेश और उपद्रव न हो सर्व प्रकार की शोभा प्राप्तिरहे, राजा धर्मात्मा होवे और ऐसा न्यायकारी हो कि कोई सामर्थवान किसी असमर्थ पर अपना बल न दिखलासके,जिस राजमें डांका, चोरी, खून, अधिक न होते हों जैसी महाराजा एडवर्डके राजकी शोभा इन दिनों भारतमें चमक रहीहै और धार्मिक देश हो जैसा भारतवर्ष है सुभिक्ष हो अर्थात् योगाभ्यासी के अनुकूल

भोजनके पदार्थ शुद्ध मिलते हों--फिर जहां आसन हो वहांसे एक धनुष पर्य्यन्त अर्थात् चार हाथ तक शिला, अग्नि, और जल न हो * एकान्त हो, ऐसे स्थानमें सुन्दर मठिका बनाकर बैठे, अब वह मठिका कैसी होनी चाहिये सो सुनिये ।

योग मठिका वर्णन ।

एक मठिका सात हाथ लम्बी और पांच हाथ चौड़ी होनी चाहिये जिसमें छोटासा द्वार हो, जाली झरोखा, मोखा अर्थात् छिद्र किसी प्रकारका न हो, नीची ऊँची पृथ्वी न हो, मूसादिकनका बिल उसमें न हो, ऐसी शुद्ध और स्व-च्छ हो कि उसमें मच्छर, गिरगट, मकरे, मेंढक मक्खी बिढ़ने आदि दुखदाई जन्तु न हों, सुन्दर गोबरसे लिपी हो, और नाना प्रकारके अगर, चन्दन, लोबानादि करके सुगन्धित हो और मठिकाके बाहर मण्डपशाला वेदीकी सी नाई कूप, जलाशय, वृक्षावली, पुष्पावली करके रम-णीय हो चारों मेंड़ भीत युक्त हों, ऐसी योगियों करके कही

---

* परंच देवताओंकी मूर्तिकी शिला और हवन करनेकी थोड़ीआग और आचमनादि करनेका थोड़ा जल यदि समीप में हो तो कोई दोष नहीं ।

हुई मठिका बनाकर साधक उसमें बैठ सर्व चिन्ता विव-
र्जित कर जिस प्रकार गुरुने शिक्षा दीहो उसी प्रकार अ-
भ्यास आरंभ करे ।

प्राणायामकी सहायता करने वाली क्रियाओंका वर्णन।

प्राणायाम की सहायता करनेवाली बहुतेरी क्रियायें हैं जिनके बिना प्राणायाम कदापि सिद्ध नहीं होसकता उनमें सबसे पहले "आसन" फिर "बन्ध" फिर "षट्कर्म" हैं जिनमें आसन और बन्ध सबोंको करना उचित है परंच "षट्कर्म" (१ धोती, २ वस्ति, ३ नेती, ४ त्राटक, ५ नौली, ६ कपालभाति,) केवल उस साधक के लिये हैं जिसको श्लेष्मा (कफ) और मेद (चर्बी) अधिक होवे हों।

आसन वर्णन

आसनका व्याहार इस ग्रन्थके प्रथम भागके प्रथमभाग अध्याय २ पृष्ठ २२, २३, में वर्णन होचुकाहै देखलो

अर्थात् चौरासी लाख आसनोंमें चौरासी और चौरासीमें चार फिर चारमें एक सिद्धासन जो सब आसनों में सुलभ और श्रेष्ठ है लगानेकी आज्ञा दीगई है।

इसी आसनको कोई वज्रासन और कोई मुक्तासन और गुप्तासन भी कहते हैं, संपूर्ण आसनोंमें सिद्धासन इस कारण उत्तम और मुख्य कहाजाता है कि इसके लगाने से बहत्तर हजार नाड़ियां खुलजाती हैं, और शुद्ध होजाती हैं, जो प्राणी सदा आत्मध्यायी अर्थात् आत्माका ध्यान करने वाला है, और मिताहारी है, वह यदि बारह वर्ष केवल इस सिद्धासनको अभ्यास करे तो निःसन्देह सिद्ध होजावे, और जो यह सिद्धासन सिद्ध होजावे तो तीनों "बन्ध" जिनको आगे कहेंगे विना परिश्रम आपसे आपे प्रगट हों, क्योंकि श्री आदिनाथ शिवने कहा है कि हे पार्वति! सिद्धासनके समान कोई आसन नहीं, कुम्भक के समान प्राणायाम नहीं, खेचरी समान मुद्रानहीं, और नादके समान कोई लय नहीं, अर्थात् ब्रह्मसे मिलनेका हेतु नहीं।

नासनं सिद्धसदृशं न कुंभः केवलोपमः ।
न खेचरीसमा मुद्रा न नादसदृशो लयः ॥

ह० १। ४३

यदि किसी प्राणीको स्थूलता वा पाँवमें किसी विकार के कारण सिद्धासन लगानेमें क्लेश हो तो और किसी प्रकार

का आसन जिससे बैठनेमें उसको अधिक सुख और स्थिरता हो, और देरतक बैठसके उसीप्रकार बैठे, क्योंकि पतंजलिने अपने सूत्रमें कहाहै किः—

" स्थिरसुखमासनम् " ॥

बंध वर्णन ।

बंध तीन हैं, मूलबंध, जालंधर बंध, और उड्डियान बंध इन तीनों बंधोंके सहित प्रणायाम करनेसे पूरक, कुम्भक, और रेचकमें दम नहीं फूलता, और किसी प्रकार का कष्ट वायुके चढाने रोकने और उतारनेमें नहीं होता ।

१. **मूलबंध**—यह बंध पूरकके समय अर्थात् वायुको मूलद्वारसे ऊपरकी ओर खींचनेके समय किया जाता है ।

पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुंचयेद्गुदम् ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबंधोऽभिधीयते ॥

ह० ३ । ६१,

अर्थात् बाईं एड़ीसे मूलद्वारके ऊपर भागमें योनि स्थानको दाबकर (सिद्धासन में आपसे आप दबही जाता है देखो अध्याय २ पृष्ठ २२, २३)

गुदाको आकुंचन कर अर्थात् ऊपरको सिकोड़ अपान वायुको धीरे धीरे चढ़ाना मूलबंध कहाजाता है, इस बंध के करनेसे चतुर्दल कमलका मुंह जो नीचे है उलटकर ऊपर होजाता है ॥ ६१ ॥

२. जालंधरबंध—कुम्भकके समय अर्थात् प्राण वायुको ब्रह्मरन्ध्रमें रोकनेके समय कियाजाता है।

कण्ठमाकुंच्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम् ।
बंधो जालंधराख्योऽयं जरामृत्युविनाशकः ॥

ह० ३ । ७०

अर्थात् कंठको नीचे मुंह झुकाय ठुड्ढी (चिबुक) को हृदयके चारअंगुल ऊपर जो थोड़ी गहराई है उसमें स्थापना कर (जैसा सिद्धासनमें कियाजाता है) वायु को पेटमें भरकर रोके रहै, इसे जालंधरबंध कहते हैं, इस बंधमें पेट ऊपर को फूल कर उठा हुआ देखपड़ता है।

इस बंधसे कुंभक देरतक होता है, और जरा मृत्यु कदापि समीप नहीं आसकती।

३ उड्डियान बंध— यह बंध रेचकके समय अर्थात् प्राणवायु नीचे छोड़नेके समय कियाजाता है।

मूलस्थानं समाकुंच्य नाभिमाकृष्य पश्चिमे ।
शनैस्तु रेचयेत्प्राणमुड्डियानः स उच्यते ॥

अर्थात् मूलद्वारको आकुंचन कर नाभीको पीठ की ओर सटाते हुये यहां तक पीछे खींचे कि नाभी पीठ के रीढ़ अर्थात् मेरुदण्डमें सटजावे, जैसे २ प्राण छोड़ताजावेगा वैसे २ आपसे आप नाभी पीठकी ओर सिकुड़ती जावेगी इसीको उड्डियान बंध कहते हैं, इस बंधसे रेचकके समय वायु सुखपूर्वक अपना सीधा मार्ग पाकर बाहर निकलआता है ।

ये तीनों बन्ध यदि आपसे समझमें न आवें तो अपने गुरुसे बनवा कर देखलेना, क्योंकि गुरु द्वारा ही ये तीनों बन्ध जानने योग्य हैं ।

षट् कर्म वर्णन ।

ये "षट्कर्म" सर्वसाधारण साधकोंको करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं, केवल उसी साधककेलिये इन कर्मों की आज्ञा दीगई है जिसको मेद और श्लेष्मा अधिक होते हों; अथवा किसी रोगसे ग्रसित रहनेके कारण प्राणायामादि क्रिया न करसका हो, क्योंकि इन षट्कर्मोंके

अभ्याससे मेद और श्लेष्मा कम होजाते हैं, और सर्व प्रकार के रोगोंकी हानि होजानेसे शरीर शुद्ध और निर्मल प्राणायामादि क्रिया करने योग्य होजाता है, इसलिये संक्षेप से ये क्रियायें भी कथन करदीजाती हैं, और उनके करने की ठीक २ युक्तियां बताई जाती हैं।

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते॥

ह० २। २२

अर्थात् धौति १, वस्ति २, नेति ३, त्राटक ४, नौलि ५, कपालभाति ६, ये षट् कर्म कहेजाते हैं।

इनको गुप्त रीतिसे करना चाहिये, अब उन के करनेकी युक्तियां बताई जाती हैं।

१ धौतिः

चतुरंगुलविस्तारं हस्तपंचदशायतम्।
गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत्॥
पुनः प्रत्याहरेच्चैतदुदितं धौतिकर्म तत्॥
राजदंतेन संलग्नं कृत्वा नौलिं यथाविधिः।

कासश्वासप्लीहकुष्ठं कफरोगाश्च विंशतिः।
धौतिकर्मप्रभावेन, प्रयांत्येव न संशयः॥

ह० २। २४, २५, २६

अर्थात् धौतिकर्म कैसे किया जाता है उसे वर्णन करते हैं, एक सूक्ष्म कोमल मलमल वा पगड़ीका टुकड़ा जो गरमपानीसे भिगोया* हुवाहो, चार अंगुल चौड़ा और पन्द्रहहाथलम्बा लेकर गुरुके बतायेहुये मार्गसे पहलेदिन एकहाथ दूसरेदिन दोहाथ इसीप्रकार धीरे २ पन्द्रहहाथ कपड़ा निगलकर फिर एक छोर उस कपड़ेको जब एक बिलस्त मात्र रहजावे उसे राजदंत अर्थात् अगले दोनों दांतोंसे पकड़रक्खे, फिर नौलीकर्म जो आगे कहेंगे उसके द्वारा पेट को भ्रमाकर कपड़ेको छातीसे नीचे उतारदे, फिर धीरे २ उस कपड़ेको बाहर निकाल लवे, उसके साथ कलेजेका सब कफ बाहर निकल आवेगा; फिर उस कपड़ेको धोकर उसी प्रकार करे जबतक कलेजा कफसे शुद्ध होजावे, आरम्भ करनेवाला थोड़ा २ करके

---

* इस कपड़ेको घी वा मक्खनसे तर करदेना चाहिये कि निगलनेमें क्लेश न हो।

यह अभ्यास बढ़ावे तो इससे दमा, पिलही, कुष्ठ, और भी अनेक प्रकारके कफके रोग सब नाश होजावें ।

इस क्रियासे प्राणायाममें यह लाभ होता है कि कलेजेसे ऊपरका वायु ठीक २ ब्रह्मरंध्रको गमन करने लगता है ।

२ बस्तिः

नाभिदघ्नजले पायौ न्यस्तनालोत्कटासनः।
आधाराकुंचनं कुर्यात्क्षालनं वस्तिकर्म तत्॥
गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः।
बस्तिकर्मप्रभावेन क्षीयन्ते सकलामयाः॥
धात्विन्द्रियान्तःकरणप्रसादं,
दद्याच्च कान्तिं दहनप्रदीप्तिम् ।
अशेषदोषोपचयं निहन्या,
दभ्यस्यमानं जलबस्तिकर्म ॥

ह० २ । २७, २८, २९

अर्थात् छः अंगुल लम्बा और कनिष्ठका अँगुली जिसमें प्रवेश करसके इतना छिद्र हो, चिकना वार्निश

किया हुआ एक बांसका नाल जैसा प्रायः बांसके पंखों के जड़में हाथसे पकड़कर डोलानेके लिये बना रहता है, बनवारक्खे, फिर उसे लेकर एकान्त स्थानमें नदी वा किसी तालके तटमें जाय नाभी तक जलमें प्रवेश करे, फिर उस नालको चार अंगुल गुदाके भीतर धीरे २ प्रवेश करे, और दो अंगुल बाहर रक्खे, फिर उत्कट आसन * करके जलको गुदाके छिद्र द्वारा धीरे २ ऊपरकी ओर खींच पेटमें भर चारों ओर अंमाय नीचें की ओर छोड़दे; अर्थात् उसजलको बाहर निकालदे, एवम् प्रकार कमसे कम तीन और अधिकसे अधिक सातवार करे, इसीको वस्तिकर्म कहते हैं।

यह वस्तिकर्म और पूर्वमें जो कहआये हैं धौतिकर्म इन दोनोंको भोजनसे पूर्वही करे, और इनके करने के पश्चात् भोजनमें विलम्ब न करे।

गुल्म, प्लीह, जलोदर, और वात, पित्त, कफ करके उत्पन्न जितने रोगहैं सब वस्तिकर्मसे नाशहोजातेहैं, फिर

* दोनों पांवके चंगुलके बल दोनों जंघोंको भली-भांति सटाय ऊपरकी ओर गुदाको आकुंचन करना उत्कटासन है।

रोम, चर्म, मांस, रुधिर, हड्डी, भेजा, शुक्र, इन सातों धातुओंके ताप, और पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रियों के ताप, अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारादिके ताप जो मोह, शोक, विक्षेप, गौरव, दीनता, राजसी, और तामसी बुद्धि सब दूर होजाती हैं, और कान्तिकी वृद्धि जठराग्निकी प्रबलता होती है।

२ नेतिः

सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत्। मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते॥
कपालशोधिनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी। जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च॥

ह० २। ३०, ३१

अर्थात् सूत नौगुण, दशगुण वा पन्द्रह गुण भली भांति दृढ कर वटे, फिर एक बिलस्त मात्र वा इससे कुछ अधिक जिसमें किसी प्रकारकी ग्रन्थी आदि न हों, लेकर एक छोर उसका नासिकाके एक छिद्रसे प्रवेश कर दूसरे छिद्रको अंगूठेसे दबा पूरक करे, फिर मुंहसे

रेचक करे, ऐसा बारम्बार करनेसे सूतका एक छोर मुंह के छिद्रमें निकल आवेगा, उस छोरको तर्जनी और अंगूठेसे पकड़ बाहर निकालले, अर्थात् एक छोर नासिकाके बाहर रहे, और दूसरा छोर मुंहके बाहर रहे, फिर इन दोनों छोरोंको पकड़ चलावे तो उस सूतके साथ कफादि मस्तकके मैल लिपटेहुये बाहर निकल आवेंगे, फिर उस सूतको जलसे धो शुद्धकर बारम्बार उक्त प्रकारसे करे, इसी क्रियाको महात्माओंने नेति कही है ।

इस क्रियासे मस्तकके सब मैल दूर होजाते हैं, और दिव्य दृष्टि अर्थात् सूक्ष्म पदार्थोंके देखनेकी शक्ति होजाती है, और कंधेके जोड़के ऊपरके सर्वप्रकारके रोग नाश होजाते हैं ।

४ त्राटकम्

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः ।
अश्रुसंपातपर्यंतमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम् ॥
मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम् ।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम् ॥

ह० २ । ३२, ३३

अर्थात् नेत्रोंके सामने कोई सूक्ष्म पदार्थ जो एक बिन्दुके समान हो, वा एक बिन्दु ही बनाकर अथवा कोई चमकीली वस्तु जैसे दीपशिखा वा एक मोती वा हीरा वा कोई सुन्दर चित्र रखकर निश्चलदृष्टि कर एकटक देखतारहै, जबतक कि आंखों में आंसू भरआवें, इसप्रकार बारम्बार अभ्यास करनेसे मन एकाग्र हो-जाता है; इसीको त्राटक कहते हैं । सिद्धासनसे पहले इसके अभ्यास करलेनेसे आसनमें सुगमता होती है ।

इस क्रियासे नेत्रके सब रोग नाश होते हैं, और आलस्य, निद्रा, तमोगुण करके उत्पन्न जो क्रोधादि सब दूर होजाते हैं। यह त्राटक सोनेकी पेटी ऐसी छिपाकर गुप्त रखने योग्य हैं ।

५ नौलिः

अमंदावर्तवेगेन तुंदं सव्यापसव्यतः ।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते ॥
मंदाग्निसंदीपनपाचनादि,
संधापिकानन्दकरी सदैव ।
अशेषदोषामयशोषणी च

हठक्रियामौलिरियं च नौलिः ॥

ह० २ । ३४, ३५

अर्थात् दोनों कंधोंको नीचे मुँह झुकाय जैसे जल का भ्रमर बायें दाहिने घूमता है, उसी प्रकार वेग करके पेटको बायें दाहिने भ्रमावे, अर्थात् चलावे। इसीको सिद्धों ने नौली कही है ।

इस क्रियासे मन्द जठराग्नि प्रबल होजाती है, और जो कुछ अन्न भोजन करें सो सब भली भांति परिपक्व होजाता है, फिर आनन्द करनेवाली, और वात करके उत्पन्न सब रोगोंके नाश करनेवाली है, और षट्कर्मकी सब क्रियाओंमें मुकुटकीसी नाईं अर्थात् श्रेष्ठ है। धौति और बस्ति दोनोंमें यही नौली करनी पड़ती है, इसलिये इसे षट्कर्ममें सिद्धोंने कथन किया है ।

६ कपालभातिः

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी ॥

ह० २ । ३६

अर्थात् लोहारकी धौंकिनीकी तरह बारम्बार शीघ्र रेचक और पूरक करनेको "कपाल भाति" कहते हैं। परंच इस क्रियाके करानेवालोंको सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि जिस नासापुटसे पूरक करें उसी ओर रेचक न करें। किन्तु जिधरसे रेचक करें उधरसे पूरक भी कर सकते हैं।

जिनको मेद और श्लेष्माका विकार नहीं है उनके लिये इन क्रियाओंकी आवश्यकता नहीं है, केवल पथ्यापथ्यके ठीक रखनेसे और यम नियमके पालन करने हीसे उनकी क्रिया सिद्ध हो जाती है।

कुम्भकके भेदसे आठों प्रकारके प्राणायामका वर्णन।

कुम्भकके भेदसे आठ प्रकारके प्राणायाम हैं। इनमें से किसी एकको सिद्ध करनेसे आठों आपसे आप सिद्ध होजाते हैं। साधकोंको उचित है कि इन आठोंमें अपनी रुचि अनुसार जो सुलभ जानपड़े उसी एककी ठीक २ रीति अपने गुरुसे प्राप्त कर अभ्यास करें। ऐसा न करें कि चंचल चित्त होकर कभी यह और कभी वह आरम्भ करें। और सिद्ध एकभी न हो।

दोहा ।

इक साधेतें सब सधैं, सब साधे सब जाय ।
जो गहिराखे मूलको, फूले फलै अघाय ॥

अब आठों प्रकारके कुम्भकोंका वर्णन उनके फल सहित विलग २ कियाजाता है ।

सूर्य्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा । भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा प्लाविनी-त्यष्ट कुम्भकाः ॥ ह० २ । ४४

अर्थात् सूर्यभेदन १, उज्जायी २, सीत्-कारी ३, शीतली ४, भस्त्रिका ५, भ्रा-मरी ६, मूर्च्छा ७, प्लाविनी ८, ये आठ प्रकारके प्राणायाम कुंभकके भेदसे हैं ।

१ सूर्य्यभेदनम्

आसने सुखदे योगी बध्वा चैवासनं ततः । दक्षनाड्या समाकृष्य बहिस्थं पवनं-शनैः॥ आकेशादानखाग्राच्च निरोधावधि

कुंभयेत्। ततः शनैः सव्यनाड्या रेचयेत्-
पवनं शनैः ॥
कपालशोधनं वातदोषघ्नं कृमिदोषहृत्
पुनःपुनरिदं कार्य्यं सूर्य्यभेदनमुत्तमम् ॥

ह० २ । ४८, ४९, ५०

अर्थात् अच्छे शुद्धस्थानमें जो बहुत ऊंचा नीचा न हो जैसा मठ लक्षण पूर्वमें कहआये हैं वैसाहो, सुन्दर सुख देनेवाला जो सिद्धासन तिसे सुखपूर्वक लगाय गर्दन, शिर, और शरीरको सीधा और स्थिर कर बाईं नासापुटको रोक दाहिनी नासापुटसे अर्थात् पिंगला नाड़ीसे शरीरके भीतरके वायुको मूलद्वारसे ऊपर की ओर खींचे, अर्थात् पूरक करे। फिर केश पर्यन्त और नख पर्यन्त वायुको यत्नपूर्वक रोक कुम्भक करे, अर्थात् जहांतक बलहो वायुको रोके, बलसे अधिक न रोके, क्योंकि बलसे अधिक रोकनेसे वायु रोमद्वारसे निकल देहको विदीर्ण करता है, जब न रोकसके तो धीरे२ जिस प्रकार चींटी चलती है वायुको बायीं नासापुट अर्थात् इड़ासे उतारदे यही सूर्यभेदन महात्माओंने कहा है।

इस क्रियासे मस्तकके सब भेद दूर होते हैं, और वातसे उत्पन्न जितने रोग हों सब नाश होजाते हैं, और पेटमें कीड़े नहीं पड़ते।

२ उज्जायी

मुखं संयम्य नाडीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः।
यथा लगति कंठात्तु हृदयावधि सस्वनम्॥
पूर्ववत्कुंभयेत्प्राणं रेचयेदिड़या ततः।
श्लेष्मदोषहरं कंठे देहानलविवर्धनम्॥

ह० २।५१, ५२

अर्थात् मुंह मूंदकर विना किसी नासापुटके रोके कंठसे एकहीवार इड़ा, पिंगला, दोनों नाड़ियों द्वारा वायुको इस प्रकार ऊपरकी ओर खींचे कि कंठसे हृदय तक वायु शब्द सहित लगताहुआ जानपड़े, जिसप्रकार निद्राके समयकी ध्वनि कंठसे हृदय तक लगताहुई जान पड़ती है, फिर जैसे सूर्यभेदनमें कहागया है उसी प्रकार नख और केश तक यत्न पूर्वक कुंभक कर इड़ा नाड़ीसे रेचक करदे, इसीको सिद्धोंने उज्जायी कही है, और इस क्रियाका सबसे उत्तम फल तो यह है कि कंठमें कफ करके जितने दोष हों सब दूर होजाते हैं, और जठराग्नि प्रबल होता है। ५१, ५२

३ सीत्कारी

सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव वि-
जृंभिकाम् । एवमभ्यासयोगेन कामदेवो
द्वितीयकः ॥ योगिनीचक्रसामान्यःसृष्टि
संहारकारकः । न क्षुधा न तृषा निद्रा
नैवालस्यं प्रजायते ॥

ह० २। ५४, ५५

अर्थात् दोनों होठोंके मध्य जिह्वा लगाय वायुको मुंहसे सीत * ऐसा शब्द करतेहुवे धीरे २ खैंच पूरक कर पूर्व कहे प्रकार कुंभक यत्न पूर्वक करे। फिर दोनों नासापुटोंसे विजृंभिका रेचक करे। (मुँह बन्दकर दोनों नासापुटसे रेचक करनेको विजृंभिका रेचक कहते हैं।) इसमें किसी नासापुटके रोकनेकी आवश्यकता नहीं रहती इसकारण यह क्रिया अत्यन्त सुखदेनेवाली कान्ति को दूसरे कामदेव ऐसी बनादेती है, और इसका करने वाला कामियोंके मध्य विहार करतेहुये भी कामवश

---

* (सी, सी) ऐसी ध्वनि आदिमें खींचनेके समय होकर अन्तमें (त) ऐसी ध्वनिसे समाप्त हो वही सीत्कार ध्वनि है ।

नहीं होता है। फिर सृष्टि और संहार करनेमें समर्थ होता है। क्षुधा, तृषा, निद्रा, आलस्यादिसे रहित हो जाता है, और योगियोंमें श्रेष्ठ होता है। इस फलको सत्य जानना।

४ शीतली

जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत्कुंभसादनम्। शनकैर्घ्राणरंध्राभ्यां रेचयेत्पवनं सुधीः। गुल्मप्लीहादिकान् रोगाञ्ज्वरं पित्तं क्षुधां तृषाम्। विषाणि शीतलीनाम कुंभिकेयं निहंति हि॥

ह० २। ५७, ५८

अर्थात् जिस प्रकार पक्षीकी नीचली चोंच रहती है, वैसेही होठोंके बाहर जिह्वा निकाल मुंहसे पूरककर पूर्व रीतिसे कुंभक करे, फिर दोनों नासापुटसे रेचक करदे, इसमें और पूर्व कही सीत्कारीमें बहुत थोड़ा अन्तर है। इन दोनोंको गर्मीके दिनोंमें करनेसे गर्मी नहीं जान पड़ती, और गुल्म, प्लीह, ज्वर, पित्तके दोष, क्षुधा, पिपासा, और सर्प आदि दुष्ट जीवोंके विष दूर होजाते हैं। ५७, ५८

५. भस्त्रिका

सम्यक्सिद्धासनं बध्वा समग्रीवोदरं सुधीः
मुखं संयम्य यत्नेन घ्राणं घ्राणेन रेचयेत्।
यथा लगति हृत्कंठे कपालावधि सस्वनम्।
वेगेन पूरयेच्चापि हृत्पद्मावधि मारुतम्॥
पुनर्विरेचयेत्तद्वत्पूरयेच्च पुनः पुनः।
यथैव लोहकारेण भस्त्रा वेगेन चाल्यते॥
तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत्पवनं धिया।
यदा श्रमो भवेद्देहे तदा सूर्येण पूरयेत्॥
यथोदरं भवेत्पूर्णमनिलेन तथा लघु। धार-
येन्नासिकां मध्यातर्जनीभ्यां विना दृढम्।
विधिवत्कुंभकं कृत्वा रेचयेदिड़यानिलम्।
वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्निविवर्धनम्॥
कुंडलीबोधकं क्षिप्रं पवनं सुखदं हितम्।
ब्रह्मनाडीमुखेसंस्थकफाद्यर्गलनाशनम्॥
सम्यग्गात्रसमुद्भूतंग्रंथित्रयविभेदकम्।

विशेषेणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुंभकं त्विदम् ॥

ह० २ । ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७

अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष सिद्धासन दृढ़कर भली भांति लगाय गर्दन और उदर सीधा कर यत्नपूर्वक मुंह मूंद पिंगलासे ऐसा रेचक करे कि हृदयसे कंठ और मस्तक तक वायु शब्द सहित लगता हुआ जान पड़े, फिर शीघ्रही हृदय कमल तक पूरक करे। फिर रेचक कर फिर पूरक करे। फिर रेचक करे। जैसे लोहार की भाथी (धौंकनी) चलती है उसी प्रकार वारम्वार रेचक पूरक करे। जब करते २ थकं जावे तब उसी पिंगला से ऐसा पूरक करे कि वायु उदरसे भरजावे, फिर पूरक के पश्चात् अंगूठेसे दाहिनी और अनामिका कनिष्ठिका से बांयीं नासापुटको रोक दृढ़ नासिका कर जालंधर-बंध पूर्वक कुंभक करके वाम नाड़ीसे रेचक करदे, अर्थात् दाहिने नासापुटसे पहले कईवार रेचक पूरक कर थकने पर शीघ्र फिर पूरक कर पूर्ववत् कुंभक करते हुये बांयें नासापुटसे रेचक करदे, फिर वाम नाड़ीसे उसी प्रकार कईवार रेचक पूरक कर जब थके उधरहीसे शीघ्र पूरक कर कुंभक करतेहुये दाहिनी नाड़ी द्वारा रेचक करे। यह

एक रीति हुई, अब दूसरी रीति यह है कि वाम नासा-पुट अनामिका कनिष्ठकासे रोक दाहिनीसे पूरककर झट दाहिनीको अंगूठासे रोक बायींसे रेचक करे। फिर बायींसे पूरक कर दाहिनीसे रेचक करे। फिर दाहिनीसे पूरक कर बायींसे रेचक करे। अर्थात् धौंकनी ऐसी वार-म्बार करे। ऐसा करके जब थक जावे तब शीघ्रही बायें से पूरक कर विधिवत् कुंभक करतेहुये दाहिनीसे रेचक करदे।

यह भस्त्रिका और सब कुंभकोंमें श्रेष्ठ है, अर्थात् आठों प्राणायामोंमें उत्तम है। क्योंकि सूर्यभेदन और उज्जायी गरम हैं, इसलिये केवल शीतकालमें ही हित-कारी हैं, अर्थात् शीतकालमें इनके करनेसे शीत शरीर में नहीं व्यापता, और सीत्कारी, शीतली, दोनों ठंढी हैं, इसलिये केवल गरमऋतुमें हितकारी हैं, अर्थात् इनके कर-नेसे गरमी शरीरमें नहीं व्यापती अर्थात् ये चारों एक २ समयके हितकारी हैं। भस्त्रिका समान है। इसलिये सर्व समय शीत उष्ण दोनोंमें हितकारी है। सूर्य्यभेदन वातको, उज्जायी कफको, सीतली सीत्कारी पित्तको नाश करतेहैं, और यह भस्त्रिका तीनोंको अर्थात् त्रिदोषको नाश करती है। फिर शीघ्रही सूतीहुई कुण्डली को जगादेती है। ब्रह्मका साक्षात्कार करानेवाली है, फिर

सुष्मणाके अग्रभागमें जो कफादि वायुके मार्गको रोकने वाले हों उनको नाश करदेती है, फिर सुष्मणा नाड़ीमें जो ब्रह्मग्रन्थी, विष्णु ग्रन्थी, और रुद्र ग्रन्थी तीन ग्रन्थियां हैं तीनोंको तोड़देती है ।

इस क्रियाको अवश्यही करनी चाहिये । सूर्यभेदन आदि जैसे होवे वैसेही करे । परंच इस भस्त्रिकाको अवश्यही विधिपूर्वक कियाकरे । यदि आपसे समझमें न आवे तो एकवार अपने गुरुसे करवाकर देखलेवे ।

६ भ्रामरी

वेगाद्घोषं पूरकं भृंगनादं,
भृंगीनादं रेचकं मंदमंदम् ।
योगीन्द्राणामेवमभ्यास योगा-
च्चित्ते जाता काचिदानन्दलीला ॥

ह० २ । ६८

अर्थात् पूरकके समय भृंग समान नाद हो, और रेचकके समय भृंगी समान, ऐसे पूरक रेचक जिसमें हों वही भ्रामरी है, अर्थात् इड़ा वा पिंगला किसी एक नाड़ी से भ्रमर ऐसा नाद करतेहुए पूरक कर, कुम्भक करते हुए दूसरी नाड़ीसे भ्रामरी समान नाद करतेहुए रेचक

करदे, ऐसे अभ्यास करनेवाले योगियोंके चित्तमें ऐसी आनन्द लीला होती है जो कथन नहीं कीजासकती।

७ मूर्च्छा।

पूरकान्ते गाढ़तरं बध्वा जालंधरं शनैः।
रेचयेन्मूर्छनाख्येयं मनोमूर्छा सुखप्रदा॥

ह० २। ६६

अर्थात् किसी एक नाड़ीसे पूरक करनेके पश्चात् जालंधर बाँध धीरे २ रेचक करे तो यह कुंभिका मन को मूर्च्छा करती है। जिसको मनो-मूर्च्छा कहते हैं, जिस से नानाप्रकारके सुख उपजते हैं।

८ प्लाविनी

अन्तः प्रवर्तितोदारमारुतापूरितोदरः।
पयस्यगाधेऽपि सुखात्प्लवते पद्मपत्रवत्॥

ह० २। ७०

अर्थात् पूरक करके शरीरमें चारों ओरसे वायुको बांधकर इस प्रकार उदरको भरलेवे कि अथाह जलके ऊपर कमलपत्र ऐसा सुखपूर्वक बहतारहे, ऐसे कुंभकको प्लाविनी कहते हैं।

भ्रामरी, मूर्च्छा, और प्लाविनी, इन तीनोंमें पूरक गरम समय बांयी नासापुटसे और शीत समय दाहिनी नासापुटसे कियाकरे। फिर जब अभ्यास करते २ सुषुम्णा खुलजाय तो नासापुटोंके रोकनेकी कुछभी आवश्यकता नहीं है, विना रोके पूरक, कुंभक, रेचक कियाकरे। सुखपूर्वक सिद्ध होजावेगा।

प्राणायाम सिद्ध करनेकी अत्यन्त सुलभ रीति।

अब इस स्थानमें प्राणायामके साधनकी सुलभ से सुलभ रीति वर्णन कीजाती है। जिसमें किसी प्रकार का परिश्रम नहीं होता न कोई आसन लगाना पड़ता, न नासापुट रोकनेकी आवश्यकता रहती, न वायु चढ़ाना उतारना पड़ता, अर्थात् पूरक रेचककी भी आवश्यक्ता नहीं पड़ती आपसे आप केवल कुंभक सिद्ध होजाता है। सोये, बैठे, खड़े, चलते चाहे जिस दशामें रहिये यह सुन्दर सहज रीति साधन करते रहिये। वह यह है कि

पूर्व में जो "त्राटक" कहआये हैं (देखो पृष्ठ ४६) कुछदिन उसे विधि पूर्वक अभ्यास करे। जब ऐसे अभ्यास करते २ आंखें थोड़ी देर तक एक स्थानमें ठहरने लगजावें, तब कुछदिन अपनी नाभीकी ओर दोनों नेत्र

कर देखे, फिर नाभिसे धीरे धीरे पुतलियोंको ऊपरकी ओर उठाताहुआ कलेजेकी गहराई पर ला जमावे फिर उसी प्रकार अभ्यास करताहुआ ऊपरकी ओर पुतलियोंको चढ़ातेहुए नासिकाके अग्रभागको देखे, जब कुछ दिन पीछे ऐसे देखते २ नासिकाका अग्रभाग दोनों पुतलियों से एकही बार स्वच्छ दिखाने लगे, और नेत्रोंको किसी प्रकारका क्लेश न हो तब बिना पलक उठाये पुतलियों हीको इसप्रकार नासिकाकी मध्य लकीर होकर ऊपर चढ़ाता जावे, कि पुतलियां एकदम पलकोंके भीतर चलीजावें। इस प्रकार जबपुतलियां पलकोंके भीतरप्रवेश करजावेंगी तबउन के सामने एक अति गंभीर अँधियाली छा जावेगी, फिर इस अँधियालीमें औरभी ऊपरकी ओर धीरे २चढ़ाते२ पुतलियां उलटजावेंगी, इनके उलटतेही एक प्रकाश ज्योतिस्वरूप मण्डलाकार अति मोहनी करोड़ों सूर्यसा दमकताहुआ और बिजलीके समान थरथराताहुआ प्रगट होगा, फिर क्षणमात्र प्रगट होकर लोप होजावेगा। जब एवम्प्रकार तेज प्रगट होकर लोप होजाया करे तब धीरे २ ऐसा यत्न करे कि वह प्रकाश शनैः शनैः स्थिर होजावे, जब कुछ काल स्थिर होने लगे तो उसी प्रकाशमें अपने इष्टदेवका ध्यान करे, ऐसा ध्यान करते २ चित्त एकाग्र होजावेगा, और चित्तके एकाग्र होनेसे वायुकी चालभी रुकजावेगी, और आपसे

आप स्वासा निरोध होकर कुंभक होजावेगा, क्योंकि वायु और मनकी चाल इस शरीरमें समान है।

दुग्धांबुवत्संमिलितावुभौ तौ,
तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि।
यतो मरुत्तत्र मनः प्रवृत्ति-
र्यतोमनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः॥
तत्रैकनाशादपरस्य नाशः,
एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः।
अध्वस्तयोश्चेन्द्रियवर्गवृत्तिः,
प्रध्वस्तयोर्मोक्षपदस्य सिद्धिः॥

प्रमाण ह० ४। २४, २५

अर्थात् दूध और पानी जैसे एक संग मिलनेसे एकदम विकजाते हैं, उसीप्रकार इस शरीरमें प्राण और मनका मेल है, अर्थात् जहां २ प्राण हैं तहां २ मनकी प्रवृत्ति है, और जहां २ मन है तहां २ प्राणकी प्रवृत्ति है, अर्थात् जिस चक्रमें मन वर्तता है, उसी चक्रमें प्राणभी वर्तता है। इसकारण एककी प्रवृत्ति होनेसे दूसरेकी प्रवृति और एकके लय होनेसे दूसरेका भी लय होजाता है, अर्थात् जबतक मन और पवन ये दोनों एकसाथ लीन नहीं होते तब तक इन्द्रियां अपने २ विषयकी ओर खींचती हैं, और

चित्तको चलायमान करदेती हैं, और जब ये दोनों एक साथ लय होजाते हैं तब मोक्षपदकी सिद्धी होती है।

मुख्य तात्पर्य उक्त बातोंसे यह है कि भ्रूमध्यमें पुतलियों के उलट जानेसे जो ब्रह्म प्रकाश प्रगट होजाता है, उसमें चित्त लीन होनेसे आपसे आप प्राण निरोध होकर कुंभक भी होजाता है । फिर पूर्वमें जो आठ प्रकारके प्राणा-यामकी रीति कथन कीगई है उनका और सब प्रकारकी क्रियाओंका मुख्य फल यही है कि चित्तवृत्तियोंका निरोध होकर एकागूता लाभ होजावे ।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।

प्रमाण—पातञ्जल अध्याय १ सूत्र २

अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंकी रुकावट हीको योग कहते हैं, और वृत्तियोंके रुकजाने हीसे अपना स्वरूप स्वच्छ देखपड़ता है, जैसे किसी पात्रमें जल रखदो जब तक डोलता रहेगा अपना मुंह स्वच्छ नहीं देखपड़ेगा जब स्थिर होजावेगा स्वच्छ देखाजावेगा, इसीप्रकार मन स्थिर होनेसे अपने स्वरूपका साक्षात्कार जानो ।

फिर शिव भगवानने पार्वतीप्रति कहा है कि हे प्रिये !

रसस्य मनसश्चैव चञ्चलत्वं स्वभावतः ।
रसो बद्धो मनोबद्धं किं न सिद्ध्यति भूतले ॥

अर्थात् पारे और मनका स्वभावही है कि चंचल होय, फिर जिस प्राणीने पारेकी और मनकी चंचलता दूरकर एक स्थानमें बांधली, वह क्या नहीं सिद्ध करसक्ता है ?

फिर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने भी यही युक्ति अर्जुनको गीतामें उपदेश की है।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतर चारिणौ ॥ यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्ष परायणः । विगतेच्छाभयक्रोधो यःसदा मुक्त एव सः ॥ प्र० गीता अ० ५ श्लोक २७, २८

अर्थात् बाह्य इन्द्रियोंके विषयको त्यागकर नेत्रोंकी दृष्टि भृकुटीके भीतर मध्यभागमें प्रवेश कर प्राण और अपानको बलसे सम कियेहुये अर्थात् नासिकाके भीतरही भीतर संचार करताहुआ जो मननशील बुद्धिमान प्राणी मोक्षहीमें मनलगाता है,चित्तवृत्तियोंको रोकताहुआ इच्छा, भय, क्रोधादिसे रहित होता है वह सर्वकालमें मुक्तही है।

फिर मरण समयमें भी इसी युक्तिके करने की आज्ञा दीगई है।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांस-

मनुस्मरेद्यः । सर्वस्य धातारमचिंत्य
रूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥
प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो
योगबलेन चैव । भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य
सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

भ० गी० अ० ८ श्लो० ९, १०

अर्थात् जो प्राणी मरणकालमें भी भक्तियुक्त हो स्थिर मन कर योगबलसे दोनों भृकुटीनके मध्य सुष्मणा नाड़ी द्वारा सम्यक् प्रकारसे प्राण वायुको प्रवेश करके कुंभक करे, कविम्, अर्थात् सर्वज्ञ, पुराणम् अर्थात् पुरातन पूर्वसे पूर्व अनुशासितारम्, अर्थात् सबको आज्ञामें रखनेवाला, अणोः अणीयांसम्, अर्थात् सूक्ष्म से भी सूक्ष्म सर्वस्य धातारम्, अर्थात् सर्वका धारण करनेवाला अचिन्त्यरूपम्, अर्थात् जिसका रूप चिंतवनमें न आसके, आदित्यवर्णम्, अर्थात् सदा सूर्यके ऐसा प्रकाशमान, तमसः परस्तात् अर्थात् मायाके गुणोंसे रहित ऐसा जो पुरुष अर्थात् परमात्मा तिसको उस भ्रूमध्यमें ध्यान करता है, वह उस सर्वोत्तम दिव्य प्रकृति गुण रहित परमात्माको प्राप्त होता है।

इसी क्रियाको महात्माओंने शांभवी मुद्रा योगके उत्तम मुद्राओंमें कथन की है

अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता ।
एषा सा शांभवी मुद्रा वेदशास्त्रेषु गोपिता।
अन्तर्लक्ष्यविलीनचित्तपवनो योगी यदा
वर्तते, दृष्ट्या निश्चलतारया बहिरधः
पश्यन्नपश्यन्नपि ।मुद्रेयं खलु शांभवी
भवति सा लब्धा प्रसादाद्गुरोः,
शून्याशून्यविलक्षणं स्फुरति तत्त्वं परं
शांभवम् ॥ ह० ४ । ३६, ३७

अर्थात् अन्तष्करणका लक्ष जो ब्रह्म तिसमें मनको लीन किये एकाग्र चित्त हो नेत्रोंको दृढ़ स्थिर कर अर्थात् पलकोंको उठने और गिरनेसे रोक बाहरके विषयोंसे दृष्टिको हटाय, पलकोंके भीतर ही भीतर इस प्रकार अवलोकन करे कि पुतलियां पलकोंके भीतर प्रवेश करती हुई एकदम उलटजावें, और कुछ थोड़ी २ आंखोंकी सफेदी किनारे बाहरसे देखपड़े जिसमें बाहरकी वस्तुओं को देखतेहुयेभी न देखे, अर्थात् अर्धोन्मीलित-लोचन*

* आधी बन्द और आधी खुलीहुई आंखें जैसी प्रायः निद्राके समय देख पड़ती हैं नीचेकी ओर थोड़ी २ सुफेदी और पलकोंके मध्य पुतलियां प्रवेश किएहुए जानपड़ती हैं ।

हो, तिस ज्योतिस्वरूप परमात्मामें मग्न होजावे. इसीको शांभवी मुद्रा कहते हैं। जो उत्तम मुद्राओंमे गोपनीय है, और केवल गुरुही द्वारा जानने योग्य है।

यदि यह क्रिया अर्थात् नासाग्र अवलोकन करते नेत्रोंकी पुतलियोंको भृकुटीके मध्य उलट देना भी किसी साधकको कठिन जानपड़े, तो इससेभी अत्यन्त सुलभ एक और दूसरी रीति साधक गणोंके कल्याण निमित्त इस स्थानमें कथन कीजाती है। मानों बालकको परमहंस और महा दरिद्रको त्रिलोकीका राजा बनाया जाता है।

वह सुलभ रीति यह है कि एकान्त स्थानमें जहां किसी प्रकारकी भीड़ वा कोलाहल न हो, गृहमें, देवालय में, नदके तटपर, वा किसी रमणीय मैदानमें अकेला हो चारों ओरसे आखोंको बन्द कर होठोंको एक दूसरेसे मिलाय कुछ पलकोंको भी मींचतेहुवे कानके रंध्रोंको यन्त्रोंसे वा यन्त्र* न मिले तो केवल हाथकेअंगूठेहीसे

---

* बाबू देवीप्रसाद सिंह मंत्री सेक्रेटरी भारत त्रिकुटी महल जिला मुजफ्फरपुर चन्दबाराके समीप विनय पत्र भेजनेसे अनाहत शब्द श्रवण करनेको यन्त्र मिलेगा। इस यन्त्रसे कानोंके रंध्र एकदम बन्द होजाते हैं, हाथों से परिश्रम नहीं करनापड़ता। मूल्य ३)

बन्दकर कुछ दाहिने कानकी ओर ध्यान लगाय अनाहत ध्वनि श्रवण करना आरम्भ करे, फिर नाना प्रकारके बाजोंके शब्द अर्थात् भेरी, मुरली, घंटा, वीणा आदिकों के शब्द सुन पड़ेंगे, इनके सुनते २ मन स्थिर हो तुरीय पदको प्राप्त होगा और चित्त वृत्ति एकदम ब्रह्माकार होजावेगी, क्योंकि यह उपाय योगके सब उपायोंमें उत्तम है।

श्री आदिनाथेन सपाद-कोटि,
लय प्रकाराः कथिता जयंति।
नादानुसंधानकमेकमेव;
मन्यामहे मुख्यतमं लयानाम्॥

ह० ४। ६६

अर्थात् श्री आदिनाथ शिव भगवानने सवा करोड़ (एक करोड़ पच्चीसलाख) चित्तके लय होनेके साधन भेद कहे हैं, वे सब मंगल कारक हैं; परंच मैं उन सभोंमें नादानुसंधान ही मुख्यतम मानता हूं, क्योंकि इस क्रियामें कुछभी शारीरिक क्लेश उठाना नहीं पड़ता। * सोये, बैठे, खड़े, चलते, चाहे जैसे रहिये इस क्रियाको सुख पूर्वक करते रहिये, और इसी

---

* सोये बैठे रहेउताने। कहै कबीर हम उसी ठिकाने॥

नादानुसन्धानको राजयोग कहते हैं। विशेष कालिके जीवों के लिये चाहे मूर्ख हो, वा विद्वान् इससे बढ़कर कोई सुलभ साधन नहीं। यह क्रिया मूर्खोंको भी सिद्ध बनादेती है।

अब विधि पूर्वक इस क्रियाकी व्याख्या इस स्थान में साधकोंके कल्याण निमित्त कीजाती है।

कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां यं शृणोति ध्वनिं मुनिः। तत्र चित्तं स्थिरीकुर्याद्यावत्स्थिर पदं व्रजेत्॥ अभ्यस्यमानो नादोऽयं बाह्य-मावृणुते ध्वनिम्। पक्षाद्विक्षेपमखिलं जित्वा योगी सुखी भवेत्॥ श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधो महान्। ततोऽभ्यासे वर्धमाने श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मकः॥ आदौ जलधिजीमूतभेरीझर्झरसंभवाः। मध्ये मर्दलशंखोत्था घंटाकाहलजास्तथा॥ अन्ते तु किंकिणीवंशवीणाभ्रमरनिःस्वनाः। इति नानाविधा नादाः श्रूयंते देहमध्यगाः॥ मकरंदं पिबन्भृंगो गंधं नापेक्षते यथा।

नादासक्तं तथा चित्तं विषयान्नहि कांक्षते॥
मनोमत्तगजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः।
नियन्त्रणे समर्थोऽयं निनादनिशितांकुशः॥
बद्धं तु नादबंधेन मनः संत्यक्तचापलम्।
प्रयाति सुतरां स्थैर्यं छिन्नपक्षःखगो यथा॥
बद्धं विमुक्तचांचल्यं नादगंधकजारणात्।
मनः पारदमाप्नोति निरालंबाख्यखेटनम्॥
अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिर्य उपलभ्यते।
ध्वनेरंतर्गतं ज्ञेयं ज्ञेयस्यांतर्गतं मनः।
मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्।
तावदाकाशसंकल्पो यावच्छब्दः प्रवर्तते॥
निःशब्दं तत्परं ब्रह्म परमात्मेति गीयते।
यत्किंचिन्नादरूपेण श्रूयते शक्तिरेव सा॥
यस्तत्त्वांतो निराकारः स एव परमेश्वरः॥
सदा नादानुसंधानात्क्षीयंते पापसंचयाः।
निरंजने विलीयेते निश्चितं चित्तमारुतौ॥

ह० ४। ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ९०, ९१, ९२, १००, १, २, ५,

अर्थात् अंगुलियोंसे कानोंको मूंद तब तक अनाहत ध्वनि श्रवण करता रहे, जब तक स्थिर पदको अर्थात् तुरीय अवस्था को प्राप्त हो जावे। नादाभ्यासी को वाहर की ध्वनि नहीं सुन पड़ती, इसलिये एक पक्ष मात्र में चित्त की संपूर्ण चांचल्यताको जीत सुखी हो जाता है। प्रथम अभ्यास समय अत्यन्त गंभीर नाना प्रकारके शब्द होते हैं फिर कुछ अभ्यास बढ़ने पर वही शब्द सूक्ष्म सूक्ष्म ही सुन पड़ते हैं। अभ्यास करते २ जब वायु स्थिर होकर ब्रह्मरंध्रको गमन करता है, तब आदि में समुद्र, मेघ, भेरी, डमरु, ऐसे शब्द और मध्यमें प्रणव, शंख, घंटा, आदिके शब्द और अन्तमें प्राणके अच्छे प्रकार ब्रह्मरंध्रमें स्थिर होनेसे किंकिणी (क्षुद्रघंटिका,) वेणु, वीणा, और भ्रमर ऐसे शब्द शरीरके मध्यमें सुन पड़ते हैं।

फिर जैसे भ्रमर मकरन्द पानके समय गंधकी इच्छा नहीं करता तैसे नादमें आशक्त मन किसी विषयकी भी चाहना नहींकरता। विषय वन विहारी मतंग गज मनके लिये नाद अंकुश है। जिसके सुनने से पक्ष हीन पक्षीके समान स्थिर होजाता है, फिर गंधकके भस्मसे बंधा हुवा पारेका गुटका मुंहमें रखनेसे जैसे आकाश गति होती है, तैसे नादसे बंधाहुआ मन निरालंब ब्रह्मवृत्ति

को अखण्ड प्रवाह करता है। फिर इस नादके अन्तर्गत चैतन्य स्वप्रकाश ज्ञेय और तिस प्रकाशके अन्तर्गत मन है, सो मन उसी प्रकाशमें लय होनेसे विष्णु परम पदको लाभ करता है। जब तक शब्द सुना जाता है, आकाश ही आकाश रहता है और जब लय हो जाता है तब चित्त अपने स्वरूपमें मग्न होकर शब्द रहित निराकार ब्रह्मको प्राप्त होजाता है, क्योंकि शब्द तक प्रकृति है और शब्द रहित ब्रह्म है। इस नाद श्रवणसे सब पाप नाश होकर प्राण और मन दोनों एकाग्र हो निर्गुण चैतन्य ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं।

नादानुसंधानसमाधिभाजां,
योगीश्वराणां हृदि वर्धमानम् ।
आनन्दमेकं वचसामगम्यं,
जानाति तं श्री गुरुनाथ एकः ॥

अर्थात् योगियोंके हृदयमें जो नाद श्रवणके आनन्द की वृद्धि है वह वचनसे वर्णन नहीं हो सकती उसे केवल श्री गुरुमहाराज ही जानते हैं। इसकारण श्री परमगुरुकी सेवा ही द्वारा यह परम गोपनीय रहस्य लाखोंमें किसी एक भाग्यवान पुरुषको लाभ होता है। इति

पुस्तक मिलनेका पता ।:

मैंनेजर त्रिकुटीमहल चन्दवारा
मुजफ्फरपुर (विहार)

तथा

मैंनेजर- हंसाश्रम प्रेस
अलवर
(राजपूताना